अध्याय - १८-१९

श्री. हेमाडपंत पर बाबा की कृपा कैसे हुई? - श्री. साठे और श्रीमती देशमुख की कथा, आनन्द प्राप्ति के लिये उत्तम विचारों को प्रोत्साहन, उपदेश में नवीनता, निंदा सम्बंधी उपदेश और परिश्रम के लिए मजदूरी।

ब्रह्मज्ञान हेतु लालायित एक धनी व्यक्ति के साथ बाबा ने किस प्रकार व्यवहार किया, इसका वर्णन हेमाडपंत ने गत दो अध्यायों में किया है। अब हेमाडपंत पर किस प्रकार बाबा ने अनुग्रह कर, उत्तम विचारों को प्रोत्साहन देकर उन्हें सफलीभूत किया तथा आत्मोन्नति व परिश्रम के प्रतिफल के सम्बन्ध में किस प्रकार उपदेश किये, इनका इन दो अध्यायों में वर्णन किया जायेगा।

पूर्व विषय

यह विदित ही है कि सद्‌गुरु पहले अपने शिष्य की योग्यता पर विशेष ध्यान देते हैं। उनके चित्त को किंचित्‌मात्र भी डावाँडोल न कर वे उपयुक्त उपदेश देकर उन्हें आत्मानुभूति की ओर प्रेरित करते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ लोगों का विचार है कि जो शिक्षा या उपदेश सद्‌गुरु द्वारा प्राप्त हो, उसे अन्य लोगों में प्रसारित न करना चाहिये। उनकी ऐसी भी धारणा है कि उसे प्रकट कर देने से उसका महत्त्व घट जाता है। यथार्थ में यह दृष्टिकोण संकुचित है। सद्‌गुरु तो वर्षा ऋतु के मेघसदृश हैं, जो सर्वत्र एक समान बरसते हैं, अर्थात् वे अपने अमृततुल्य उपदेशों को विस्तृत क्षेत्र में प्रसारित करते हैं। प्रथमतः उनके सारांश को ग्रहण कर आत्मसात् कर लें और फिर संकीर्णता से रहित होकर अन्य लोगों में प्रचार करें। यह नियम जागृत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में प्राप्त उपदेशों के लिए है। उदाहरणार्थ बुधकौशिक ऋषि ने स्वप्न में प्राप्त प्रसिद्ध 'रामरक्षा स्तोत्र' साधारण जनता के हितार्थ प्रगट कर दिया था।

जिस प्रकार एक दयालु माता, बालक के उपचारार्थ कड़वी औषधि का बलपूर्वक प्रयोग करती है, उसी प्रकार श्री साईबाबा भी अपने भक्तों के कल्याणार्थ ही उपदेश दिया

करते थे। वे अपनी पद्धति गुप्त न रखकर पूर्ण स्पष्टता को ही अधिक महत्त्व देते थे। इसी कारण जिन भक्तों ने उनके उपदेशों का पूर्णतः पालन किया, वे अपने ध्येय की प्राप्ति में सफल हुए। **श्री साईबाबा जैसे सद्‌गुरु ही ज्ञान-चक्षुओं को खोलकर आत्मा की दिव्यता का अनुभव करा देने में समर्थ हैं।** विषयवासनाओं से आसक्ति नष्ट कर वे भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण कर देते हैं; जिसके फलस्वरूप ही ज्ञान और वैराग्य प्राप्त होकर, ज्ञान की उत्तरोत्तर उन्नति होती रहती है। यह सब केवल उसी समय सम्भव है, जब हमें सद्‌गुरु का सान्निध्य प्राप्त हो तथा सेवा के पश्चात् हम उनके प्रेम को प्राप्त कर सकें। तभी भगवान भी, जो भक्तकामकल्पतरु हैं, हमारी सहायतार्थ आ जाते हैं। वे हमें कष्टों और दुःखों से मुक्त कर सुखी बना देते हैं। यह सब प्रगति केवल सद्‌गुरु की कृपा से ही सम्भव है, जो कि स्वयं ईश्वर के प्रतीक हैं। इसलिये हमें सद्‌गुरु की खोज में सदैव रहना चाहिये। अब हम मुख्य विषय की ओर आते हैं।

श्री साठे

एक महानुभाव का नाम श्री. साठे था। क्राफर्ड के शासनकाल में कई वर्ष पूर्व, उन्हें कुछ ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। इस शासन का बम्बई के गवर्नर लार्ड रे ने दमन कर दिया था। श्री. साठे को व्यापार में अधिक हानि हुई और परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने के कारण उन्हें बड़ा धक्का लगा। वे अत्यन्त दुःखित और निराश हो गये और अशान्त होने के कारण वे घर छोड़कर किसी एकान्त स्थान में वास करने का विचार करने लगे। बहुधा मनुष्यों को ईश्वर की स्मृति आपत्तिकाल तथा दुर्दिनों में ही आती है और उनका विश्वास भी ईश्वर की ओर ऐसे ही समय में बढ़ जाता है। तभी वे कष्टों के निवारणार्थ उनसे प्रार्थना करने लगते हैं। यदि उनके पापकर्म शेष न रहे हों तो भगवान् भी उनकी भेंट किसी संत से करा देते हैं, जो उनके कल्याणार्थ ही उचित मार्ग का निर्देश कर देते हैं। ऐसा ही श्री. साठे के साथ भी हुआ। उनके एक मित्र ने उन्हें शिरडी जाने की सलाह दी, जहाँ मन की शांति प्राप्त करने और इच्छा पूर्ति के निमित्त, देश के कोने कोने से लोगों के झुंड के झुंड आते जा रहे हैं। उन्हें यह विचार अति रुचिकर प्रतीत हुआ और सन् १९१७ में वे शिरडी गये। बाबा के सनातन, पूर्ण-ब्रह्म, स्वयं दीप्तिमान, निर्मल एवं विशुद्ध स्वरूप के दर्शन कर उनके मन की व्यग्रता नष्ट हो गई और उनका चित्त शान्त एवं स्थिर हो गया। उन्होंने सोचा कि गत जन्मों के संचित शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही आज मैं श्री साईबाबा के पवित्र चरणों तक पहुँचने में समर्थ हो सका हूँ। श्री. साठे दृढ़ संकल्प के व्यक्ति थे। इसलिये उन्होंने शीघ्र ही गुरुचरित्र का पारायण

प्रारम्भ कर दिया। जब एक सप्ताह में ही चरित्र की प्रथम आवृत्ति समाप्त हो गई, तब बाबा ने उसी रात्रि को उन्हें एक स्वप्न दिया, जो इस प्रकार है:-

बाबा अपने हाथ में चरित्र लिये हुए हैं और श्री. साठे को कोई विषय समझा रहे हैं तथा श्री. साठे सम्मुख बैठे ध्यानपूर्वक श्रवण कर रहे हैं। जब उनकी निद्रा भंग हुई तो स्वप्न को स्मरण कर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विचार किया कि यह बाबा की अत्यंत कृपा है, जो इस प्रकार अचेतनावस्था में पड़े हुओं को जागृत कर उन्हें 'गुरुचरित्र' का अमृतपान करने का अवसर प्रदान करते हैं। उन्होंने यह स्वप्न श्री. काकासाहेब दीक्षित को सुनाया और श्री साईबाबा के पास प्रार्थना करने को कहा कि इसका यथार्थ अर्थ क्या है और क्या एक सप्ताह का पारायण ही मेरे लिये पर्याप्त है अथवा उसे पुनः प्रारम्भ करूँ? श्री. काकासाहेब दीक्षित ने उचित अवसर पाकर बाबा से पूछा कि "हे देव! उस दृष्टांत से आपने श्री. साठे को क्या उपदेश दिया है? क्या वे पारायण सप्ताह स्थगित कर दें? वे एक सरलहृदय भक्त हैं। इसलिए उनकी मनोकामना आप पूर्ण करें और हे देव! कृपाकर उन्हें इस स्वप्न का यथार्थ अर्थ भी समझा दें।" तब बाबा बोले कि "उन्हें गुरु चरित्र का एक सप्ताह और पारायण करना उचित है। यदि वे ध्यानपूर्वक पाठ करेंगे तो उनका चित्त शुद्ध हो जायेगा और शीघ्र ही कल्याण होगा। ईश्वर भी प्रसन्न होकर उन्हें भव-बन्धन से मुक्त कर देंगे।" इस अवसर पर श्री. हेमाडपंत भी वहाँ उपस्थित थे और बाबा के चरणकमलों की सेवा कर रहे थे। बाबा के वचन सुनकर उन्हें विचार आया कि साठे को केवल सप्ताह के पारायण से ही मनोवांछित फल की प्राप्ति हो गई, जब कि मैं गत ४० वर्षों से 'गुरुचरित्र' का पारायण कर रहा हूँ, जिसका कोई परिणाम अब तक न निकला। उनका केवल सात दिनों तक शिरडी निवास ही सफल हुआ और मेरा गत सात वर्ष का (१९१०-१७) सहवास क्या व्यर्थ हो गया? चातक पक्षी के समान मैं सदा उस कृपाघन की राह देखा करता हूँ, जो मेरे ऊपर अमृतवर्षण करें। वे कब मुझे अपने उपदेश देने की कृपा करेंगे? ऐसा विचार उनके मस्तिष्क में आया ही था कि बाबा को सब ज्ञात हो गया। ऐसा भक्तों ने सदैव ही अनुभव किया है कि उनके समस्त विचारों को जानकर बाबा तुरन्त कुविचारों का दमन कर उत्तम विचारों को प्रोत्साहित करते थे। हेमाडपंत का ऐसा विचार जानकर बाबा ने तुरन्त ही आज्ञा दी कि शामा के यहाँ जाओ और कुछ समय उनसे वार्त्तालाप कर, १५ रुपये दक्षिणा ले आओ। बाबा को दया आ गई थी। इसी कारण उन्होंने ऐसी आज्ञा दी। उनकी अवज्ञा करने का साहस भी किसे था? श्री. हेमाडपंत शीघ्र शामा के घर पहुँचे। इस समय पर शामा स्नान कर धोती पहन रहे थे। उन्होंने बाहर आकर हेमाडपंत से पूछा कि "आप यहाँ

कैसे? जान पड़ता है कि आप मसजिद से ही आ रहे हैं तथा आप ऐसे व्यथित और उदास क्यों हैं? आप अकेले ही क्यों आये हैं? आइये, बैठिये और थोड़ा विश्राम तो करिये। जब तक मैं पूजनादि से भी निवृत्त हो जाऊँ, तब तक आप कृपा कर के पान आदि लें। इसके पश्चात् ही हम और आप सुखपूर्वक वार्त्तालाप करें।" ऐसा कहकर वे भीतर चले गए। दालान में बैठे-बैठे हेमाडपंत की दृष्टि अचानक खिड़की पर रखी 'नाथ भागवत' पर पड़ी। 'नाथ भागवत' श्री एकनाथ द्वारा रचित महाभागवत के ११ वें स्कन्ध पर मराठी भाषा में की हुई एक टीका है। श्री साईबाबा की आज्ञानुसार श्री. बापूसाहेब जोग और श्री. काकासाहेब दीक्षित शिरडी में नित्य भगवद्गीता का मराठी टीकासहित, जिसका नाम भावार्थ दीपिका या ज्ञानेश्वरी है (कृष्ण और भक्त अर्जुन संवाद), नाथ भागवत (श्रीकृष्ण उद्धव संवाद) और एकनाथ का महान् ग्रन्थ भावार्थरामायण का पठन किया करते थे। जब भक्तगण बाबा से कोई प्रश्न पूछने आते तो वे कभी आंशिक उत्तर देते और कभी उनको उपर्युक्त भागवत तथा प्रमुख ग्रंथों का श्रवण करने को कहते थे, जिन्हें सुनने पर भक्तों को अपने प्रश्नों के पूर्णतया संतोषप्रद उत्तर प्राप्त हो जाते थे। श्री. हेमाडपंत भी नित्य प्रति 'नाथ भागवत' के कुछ अंशों का पाठ किया करते थे।

आज प्रातः मसजिद को जाते समय कुछ भक्तों के सत्संग के कारण उन्होंने अपना नित्य नियमानुसार पाठ अधूरा ही छोड़ दिया था। उन्होंने जैसे ही वह ग्रन्थ उठा कर खोला तो अपने अपूर्ण भाग का पृष्ठ सामने देखकर उनको आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि बाबा ने इसी कारण ही मुझे यहाँ भेजा है, ताकि मैं अपना शेष पाठ पूरा कर लूँ और उन्होंने शेष अंश का पाठ आरम्भ कर दिया। पाठ पूर्ण होते ही शामा भी बाहर आये और उन दोनों में वार्त्तालाप होने लगा। हेमाडपंत ने कहा कि मैं बाबा का एक संदेश लेकर आपके पास आया हूँ! उन्होंने मुझे आपसे १५ रुपये दक्षिणा लाने तथा थोड़ी देर वार्त्तालाप कर आपको अपने साथ लेकर मसजिद वापस आने की आज्ञा दी है। शामा आश्चर्य से बोले "मेरे पास तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। इसलिये आप रुपयों के बदले दक्षिणा में मेरे पंद्रह नमस्कार ह. ले जाओ।" तब हेमाडपंत ने कहा कि ठीक है, मुझे आपके पन्द्रह नमस्कार ही स्वीकार हैं। आइये, अब हम कुछ वार्त्तालाप करें और कृपा कर बाबा की कुछ लीलाएँ आप मुझे सुनायें, जिससे पाप नष्ट हो। शामा बोले "तो कुछ देर बैठो। इस ईश्वर (बाबा) की लीला अद्भुत है। कहाँ मैं एक अशिक्षित देहाती और कहाँ आप एक विद्वान्, यहाँ आने के पश्चात् तो आप बाबा की

अनेक लीलाएँ स्वयं देख ही चुके हैं, जिनका अब मैं आपके समक्ष कैसे वर्णन कर सकता हूँ? अच्छा, यह पान-सुपारी तो खाओ, तब तक मैं कपड़े पहिन लूँ।"

थोड़ी देर में शामा बाहर आये और फिर उन दोनों में इस प्रकार वार्त्तालाप होने लगाः-

शामा बोले- "इस परमेश्वर (बाबा) की लीलायें अगाध हैं, जिसका कोई पार नहीं। वे तो लीलाओं से अलिप्त रहकर सदैव विनोद किया करते हैं। इसे हम अज्ञानी जीव क्या समझ सकें? बाबा स्वयं ही क्यों नहीं कहते? आप सरीखे विद्वान् को मुझ जैसे मूर्ख के पास क्यों भेजा है? उनकी कार्यप्रणाली ही कल्पना के परे है। मैं तो इस विषय में केवल इतना ही कह सकता हूँ कि वे लौकिक नहीं हैं। इस भूमिका के साथ ही साथ शामा ने कहा कि अब मुझे एक कथा की स्मृति हो आई है, जिसे मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ! **जैसी भक्त की निष्ठा और भाव होता है, बाबा भी उसी प्रकार उनकी सहायता करते हैं। कभी कभी तो बाबा भक्त की कठिन परीक्षा लेकर ही उसे उपदेश दिया करते हैं।**" 'उपदेश' शब्द सुनकर साठे के गुरुचरित्र-पारायण की घटना का तत्काल ही स्मरण करके हेमाडपंत को रोमांच हो आया। उन्होंने सोचा, कदाचित् बाबा ने मेरे चित्त की चंचलता नष्ट करने के लिये ही मुझे यहाँ भेजा है? फिर भी वे अपने विचार प्रकट न कर, शामा की कथा को ध्यानपूर्वक सुनने लगे। उन सब कथाओं का सार केवल यही था कि अपने भक्तों के प्रति बाबा के मन में कितनी दया और स्नेह है। इन कथाओं को श्रवण कर हेमाडपंत को आंतरिक उल्लास का अनुभव होने लगा। तब शामा ने नीचे लिखी कथा कहीः-

श्रीमती राधाबाई देशमुख

एक समय एक वृद्धा, श्रीमती राधाबाई, जो खाशाबा देशमुख की माँ थीं, बाबा की कीर्त्ति सुनकर संगमनेर के लोगों के साथ शिरडी आईं। बाबा के श्री दर्शन कर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्री साई-चरणों में उनकी अटल श्रद्धा थी। इसलिए उन्होंने यह निश्चय किया कि जैसे भी हो, बाबा को अपना गुरु बना, उनसे उपदेश ग्रहण किया जाय।

आमरण अनशन का दृढ़ निश्चय कर अपने विश्राम गृह में आकर उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया और इस प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गये। मैं इस वृद्धा की अग्निपरीक्षा से बिल्कुल भयभीत हो गया और बाबा से प्रार्थना करने लगा कि "देव! आपने अब यह क्या क़रना आरम्भ कर दिया है? ऐसे कितने लोगों को आप यहाँ आकर्षित किया करते

हैं? आप उस वृद्ध महिला से पूर्ण परिचित ही हैं, जो हठपूर्वक आप पर अवलम्बित है। यदि आपने कृपादृष्टि कर उसे उपदेश न दिया और यदि दुर्भाग्यवश उसे कुछ हो गया तो लोग व्यर्थ ही आपको दोषी ठहरायेंगे और कहेंगे कि बाबा से उपदेश प्राप्त न होने की वजह से ही उसकी मृत्यु हो गई है। इसलिये अब दया कर उसे आशीष और उपदेश दीजिये।" वृद्धा का ऐसा दृढ़ निश्चय देख कर बाबा ने उसे अपने पास बुलाया और मधुर उपदेश देकर उसकी मनोवृत्ति परिवर्त्तित कर कहा कि "हे माता! क्यों व्यर्थ ही तुम यातना सहकर मृत्यु का आलिंगन करना चाहती हो! तुम मेरी माँ और मैं तुम्हारा बेटा। तुम मुझ पर दया करो और जो कुछ मैं कहूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो। मैं अपनी स्वयं की कथा तुमसे कहता हूँ और यदि तुम उसे ध्यानपूर्वक श्रवण करोगी तो तुम्हें अवश्य परम शान्ति प्राप्त होगी। मेरे एक गुरु, जो बड़े सिद्ध पुरुष थे, मुझ पर बड़े दयालु थे। दीर्घ काल तक मैं उनकी सेवा करता रहा, फिर भी उन्होंने मेरे कानों में कोई मंत्र न फूँका। मैं उनसे कभी अलगाना भी नहीं चाहता था। मेरी प्रबल उत्कंठा थी कि उनकी सेवा कर जिस प्रकार भी सम्भव हो, मंत्र प्राप्त करूँ। परन्तु उनकी रीति तो न्यारी ही थी। उन्होंने पहले मेरा मुंडन कर मुझसे दो पैसे दक्षिणा में माँगे, जो मैंने तुरन्त ही दे दिये। यदि तुम प्रश्न करो कि मेरे गुरु जब पूर्णकाम थे तो उन्हें पैसे माँगना क्या शोभनीय था? और फिर उन्हें विरक्त भी कैसे कहा जा सकता था? इसका उत्तर केवल यह है कि वे कांचन को ठुकराया करते थे, क्योंकि उन्हें उसकी स्वप्न में भी आवश्यकता न थी। उन दो पैसों का अर्थ था (१) दृढ़ निष्ठा और (२) धैर्य। जब मैंने ये दोनों वस्तुएँ उन्हें अर्पित कर दीं तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। मैंने बारह वर्ष उनके श्रीचरणों की सेवा में ही व्यतीत किये। उन्होंने ही मेरा भरण-पोषण किया। अतः मुझे भोजन और वस्त्रों का कोई अभाव न था। वे प्रेम की मूर्त्ति थे अथवा यों कहो कि वे प्रेम के साक्षात् अवतार थे। मैं उनका वर्णन ही कैसे कर सकता हूँ, क्योंकि उनका तो मुझ पर अधिक स्नेह था और उनके समान गुरु कोई बिरला ही मिलेगा। जब मैं उनकी ओर निहारता तो मुझे ऐसा प्रतीत होता कि वे गम्भीर मुद्रा में ध्यानमग्न हैं और तब हम दोनों आनंदित हो जाते थे। आठों प्रहर मैं एक टक उनके ही श्रीमुख की ओर निहारा करता था। मैं भूख और प्यास की सुध-बुध खो बैठा। उनके दर्शनों के बिना मैं अशान्त हो उठता था। गुरु-सेवा की चिन्ता के अतिरिक्त मेरे लिये कोई और चिन्तनीय विषय या पदार्थ न था। मुझे तो सदैव उन्हीं का ध्यान रहता था। अतः मेरा मन उनके चरण-कमलों में मग्न हो गया। यह हुई एक पैसे की दक्षिणा। धैर्य है दूसरा पैसा। मैं धैर्यपूर्वक बहुत काल तक प्रतीक्षा कर गुरुसेवा करता रहा। **यही धैर्य तुम्हें भी भवसागर से**

पार उतार देगा। धैर्य ही मनुष्य में मनुष्यत्व है। धैर्य धारण करने से समस्त पाप और मोह नष्ट होकर उनके हर प्रकार के संकट दूर होते तथा भय जाता रहता है। इसी प्रकार तुम्हें भी अपने ध्येय की प्राप्ति हो जायेगी। धैर्य तो गुणों की खान व उत्तम विचारों की जननी है। निष्ठा और धैर्य दो जुड़वाँ बहिनों के समान ही हैं, जिनमें परस्पर प्रगाढ़ प्रेम है।''

''मेरे गुरु मुझसे किसी वस्तु की आकांक्षा न रखते थे। उन्होंने कभी मेरी उपेक्षा न की, वरन् सदैव रक्षा करते रहे। यद्यपि मैं सदैव उनके चरणों के समीप ही रहता था, फिर भी कभी किन्हीं अन्य स्थानों पर यदि चला जाता तो भी मेरे प्रेम में कभी कमी न हुई। वे सदा मुझ पर कृपा दृष्टि रखते थे। जिस प्रकार कछुवी प्रेमदृष्टि से अपने बच्चों का पालन करती है, चाहे वे उसके समीप हों अथवा नदी के उस पार। सो हे माँ! मेरे गुरु ने तो मुझे कोई मंत्र सिखाया ही नहीं, तब मैं तुम्हारे कान में कैसे कोई मंत्र फूँकूँ? केवल इतना ही ध्यान रखो कि गुरु की भी कछुवी के समान ही प्रेम-दृष्टि से हमें संतोष प्राप्त होता है। इस कारण **व्यर्थ में किसी से उपदेश प्राप्त करने का प्रयत्न न करो। मुझे ही अपने विचारों तथा कर्मों का मुख्य ध्येय बना लो और तब तुम्हें निस्संदेह ही परमार्थ की प्राप्ति हो जायेगी। मेरी ओर अनन्य भाव से देखो तो मैं भी तुम्हारी ओर वैसे ही देखूँगा। इस मसजिद में बैठकर मैं सत्य ही बोलूँगा कि किन्हीं साधनाओं या शास्त्रों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं, वरन् केवल गुरु में विश्वास ही पर्याप्त है। पूर्ण विश्वास रखो कि गुरु ही कर्त्ता है और वह धन्य है, जो गुरु की महानता से परिचित हो उसे हरि, हर और ब्रह्म (त्रिमूर्ति) का अवतार समझता है।''**

इस प्रकार समझाने से वृद्ध महिला को सान्त्वना मिली और उसने बाबा को नमन कर अपना उपवास त्याग दिया। यह कथा ध्यानपूर्वक एकाग्रता से श्रवण कर तथा उसके उपयुक्त अर्थ पर विचार कर हेमाडपंत को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका हृदय भर आया और उन्हें रोमांच हो उठा। अत्यंत आनन्दविभोर हो जाने से उनका कंठ रुँध गया और वे मुख से एक शब्द भी न बोल सके। उनकी ऐसी स्थिति देख शामा ने पूछा कि ''आप ऐसे स्तब्ध क्यों हो गये? बात क्या है? बाबा की तो इस प्रकार की लीलायें अगणित हैं, जिनका वर्णन मैं किस मुख से करूँ?''

ठीक उसी समय मसजिद में घण्टानाद होने लगा, जो कि मध्याह्न पूजन तथा आरती के आरम्भ का द्योतक था। तब शामा और हेमाडपंत भी शीघ्र ही मसजिद की ओर

चले। बापूसाहेब जोग ने पूजन आरम्भ कर दिया था, स्त्रियाँ मसजिद में ऊपर खड़ी थीं और पुरुष वर्ग नीचे मंडप में। सब उच्च स्वर में वाद्यों के साथ-साथ आरती गा रहे थे। तभी हेमाडपंत का हाथ पकड़े हुए शामा भी ऊपर पहुँचे और वे बाबा के दाहिनी ओर तथा हेमाडपंत बाबा के सामने बैठ गये। उन्हें देख बाबा ने शामा से लाई हुई दक्षिणा देने के लिये कहा। तब हेमाडपंत ने उत्तर दिया कि रुपयों के बदले शामा ने मेरे द्वारा आपको पन्द्रह नमस्कार भेजे हैं तथा स्वयं ही यहाँ आकर उपस्थित हो गये हैं। बाबा ने कहा, ''अच्छा, ठीक है। तो अब मुझे यह बताओ कि तुम दोनों में आपस में किस विषय पर वार्त्तालाप हुआ था?'' तब घंटे, ढोल और सामूहिक गान की ध्वनि की चिंता न करते हुए हेमाडपंत उत्कंठापूर्वक उन्हें वह वार्त्तालाप सुनाने लगे। बाबा भी सुनने को अति उत्सुक थे। इसलिये वे तकिया छोड़कर थोड़ा आगे झुक गये। हेमाडपंत ने कहा कि वार्त्ता अति सुखदायी थी, विशेषकर उस वृद्ध महिला की कथा तो ऐसी अद्भुत थी कि जिसे श्रवण कर मुझे तुरन्त ही विचार आया कि आपकी लीलाएँ अगाध हैं और इस कथा की ही ओट में आपने मुझ पर विशेष कृपा की है। तब बाबा ने कहा, वह तो बहुत ही आश्चर्यपूर्ण है। अब मेरी तुम पर कृपा कैसे हुई, इसका पूर्ण विवरण सुनाओ। कुछ काल पूर्व सुना वार्त्तालाप जो उनके हृदय पटल पर अंकित हो चुका था, वह सब उन्होंने बाबा को सुना दिया। वार्त्ता सुनकर बाबा अति प्रसन्न हो कहने लगे कि ''क्या कथा से प्रभावित होकर उसका अर्थ भी तुम्हारी समझ में आया है?'' तब हेमाडपंत ने उत्तर दिया कि ''हाँ, बाबा, आया तो है। उससे मेरे चित्त की चंचलता नष्ट हो गई है। अब यथार्थ में मैं वास्तविक शांति और सुख का अनुभव कर रहा हूँ तथा मुझे सत्य मार्ग का पता चल गया है।'' तब बाबा बोले, ''सुनो, मेरी पद्धति भी अद्वितीय है। यदि इस कथा का स्मरण रखोगे तो यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। **आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये ध्यान अत्यंत आवश्यक है** और यदि तुम इसका निरन्तर अभ्यास करते रहोगे तो कुप्रवृत्तियाँ शांत हो जायेंगी। तुम्हें आसक्ति रहित होकर सदैव ईश्वर का ध्यान करना चाहिये, जो सर्व प्राणियों में व्याप्त है और जब इस प्रकार मन एकाग्र हो जायेगा तो तुम्हें ध्येय की प्राप्ति हो जायेगी। मेरे निराकार सच्चिदानन्द स्वरूप का ध्यान करो। यदि तुम ऐसा करने में अपने को असमर्थ मानो तो मेरे साकार रूप का ही ध्यान करो, जैसा कि तुम मुझे दिन-रात यहाँ देखते हो। इस प्रकार तुम्हारी वृत्तियाँ केन्द्रित हो जायेंगी तथा ध्याता, ध्यान और ध्येय का पृथकत्व नष्ट होकर, ध्याता चैतन्य से एकत्व को प्राप्त कर ब्रह्म के साथ अभिन्न हो जायेगा। कछुवी नदी के इस किनारे पर रहती है और उसके बच्चे दूसरे किनारे पर। न वह उन्हें दूध पिलाती है और

न हृदय से ही लगाकर लेती है, वरन् केवल उसकी प्रेम-दृष्टि से ही उनका भरण-पोषण हो जाता है। छोटे बच्चे भी कुछ न करके केवल अपनी माँ का ही स्मरण करते रहते हैं। उन छोटे-छोटे बच्चों पर कछुवी की केवल दृष्टि ही उन्हें अमृततुल्य आहार और आनन्द प्रदान करती है। ऐसा ही गुरु और शिष्य का भी सम्बन्ध है।" बाबाने ये अंतिम शब्द कहे ही थे कि आरती समाप्त हो गई और सबने उच्च स्वर से- "श्री सच्चिदानन्द सद्गुरु साईनाथ महाराज की जय" बोली। प्रिय पाठको! कल्पना करो कि हम सब भी इस समय उसी भीड़ और जयजयकार में सम्मिलित हैं।

आरती समाप्त होने पर प्रसाद वितरण हुआ। बापूसाहेब जोग हमेशा की तरह आगे बढ़े और बाबा को नमस्कार कर कुछ मिश्री का प्रसाद दिया। यह मिश्री हेमाडपंत को देकर वे बोले कि "यदि तुम इस कथा को अच्छी तरह से सदैव स्मरण रखोगे तो तुम्हारी भी स्थिति इस मिश्री के समान मधुर होकर समस्त इच्छायें पूर्ण हो जायेंगी और तुम सुखी हो जाओगे।" हेमाडपंत ने बाबा को साष्टांग प्रणाम किया और स्तुति की कि "प्रभो! इसी प्रकार दया कर सदैव मेरी रक्षा करते रहो।" तब बाबा ने आशीर्वाद देकर कहा कि "इन कथाओं को श्रवण कर, नित्य मनन तथा निदिध्यासन कर, सारे तत्त्व को ग्रहण करो; तब तुम्हें ईश्वर का सदा स्मरण तथा ध्यान बना रहेगा और वह स्वयं तुम्हारे समक्ष अपने स्वरूप को प्रकट कर देगा।" प्यारे पाठको! हेमाडपंत को उस समय मिश्री का प्रसाद भली भाँति मिला, जो आज हमें इस कथामृत के पान करने का अवसर प्राप्त हुआ। आओ, हम भी उस कथा का मनन करें तथा उसका सारग्रहण कर बाबा की कृपा से स्वस्थ और सुखी हो जायें।

१९ वें अध्याय के अन्त में हेमाडपंत ने कुछ और भी विषयों का वर्णन किया है, जो यहाँ दिये जाते हैं।

अपने बर्ताव के सम्बन्ध में बाबा का उपदेश

नीचे दिये हुए अमूल्य वचन सर्वसाधारण भक्तों के लिये हैं और यदि उन्हें ध्यान में रखकर आचरण में लाया गया तो सदैव ही कल्याण होगा। जब तक किसी से कोई पूर्व नाता या सम्बन्ध न हो, तब तक कोई किसी के समीप नहीं जाता। यदि कोई मनुष्य या प्राणी तुम्हारे समीप आवे तो उसे असभ्यता से न ठुकराओ। उसका स्वागत कर आदरपूर्वक बर्त्ताव करो। यदि तृषित को जल, क्षुधा-पीड़ित को भोजन, नंगे को वस्त्र और आगन्तुक को अपना दालान विश्राम करने को दोगे तो भगवान् श्रीहरि तुमसे निस्सन्देह प्रसन्न होंगे। यदि कोई तुमसे द्रव्य-याचना करे और तुम्हारी इच्छा देने की न

हो तो न दो, परन्तु उसके साथ कुत्ते के समान ही व्यवहार न करो। तुम्हारी कोई कितनी ही निंदा क्यों न करे, फिर भी कटु उत्तर देकर तुम उस पर क्रोध न करो। यदि इस प्रकार ऐसे प्रसंगों से सदैव बचते रहे तो यह निश्चित ही है कि तुम सुखी रहोगे। संसार चाहे उलट-पलट हो जाये, परन्तु तुम्हें स्थिर रहना चाहिये। सदा अपने स्थान पर दृढ़ रहकर गतिमान दृश्य को शान्तिपूर्वक देखो। एक को दूसरे से अलग रखने वाली भेद (द्वैत) की दीवार नष्ट कर दो, जिससे अपना मिलन-पथ सुगम हो जाये। द्वैत भाव (अर्थात् मैं और तू) ही भेद-वृत्ति है, जो शिष्य को अपने गुरु से पृथक् कर देती है। इसलिये जब तक इसका नाश न हो जाये, तब तक अभिन्नता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। "अल्लाह मालिक" अर्थात् ईश्वर ही सर्वशक्तिमान् है और उसके सिवा अन्य कोई संरक्षणकर्ता नहीं है। उनकी कार्यप्रणाली अलौकिक, अनमोल और कल्पना से परे है। उनकी इच्छा से ही सब कार्य होते हैं। वे ही मार्ग-प्रदर्शन कर सभी इच्छाएँ पूर्ण करते हैं। ऋणानुबन्ध के कारण ही हमारा संगम होता है, इसलिये हमें परस्पर प्रेम कर एक दूसरे की सेवा कर सदैव सन्तुष्ट रहना चाहिये। जिसने अपने जीवन का ध्येय (ईश्वर दर्शन) पा लिया है, वही धन्य और सुखी है। दूसरे तो केवल कहने को ही जब तक प्राण हैं, तब तक जीवित हैं।

उत्तम विचारों को प्रोत्साहन

यह ध्यान देने योग्य बात है कि श्रीसाईबाबा सदैव उत्तम विचारों को प्रोत्साहन दिया करते थे। इसलिये यदि हम प्रेम और भक्तिपूर्वक अनन्य भाव से उनकी शरण जायें तो हमें अनुभव हो जायेगा कि वे अनेक अवसरों पर हमें किस प्रकार सहायता पहुँचाते हैं? किसी संत का कथन है कि यदि प्रातःकाल तुम्हारे हृदय में कोई उत्तम विचार उत्पन्न हो और यदि तुम उसकी पुष्टि दिनभर करो तो वह तुम्हारा विवेक अत्यन्त विकसित और चित्त प्रसन्न कर देगा। हेमाडपंत भी इसका अनुभव करना चाहते थे। इसलिये इस पवित्र शिरडी भूमि पर अगले शुभ गुरुवार के समूचे दिन नामस्मरण और कीर्त्तन में ही व्यतीत करूँ, ऐसा विचार कर वे सो रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल उठने पर उन्हें सहज ही राम-नाम का स्मरण हो आया, जिससे वे प्रसन्न हुए और नित्य कर्म समाप्त कर कुछ पुष्प लेकर बाबा के दर्शन करने को गये। जब वे दीक्षित का वाड़ा पार कर बूटी-वाड़े के समीप से जा रहे थे तो उन्हें एक मधुर भजन की ध्वनि, जो मसजिद की ओर से आ रही थी, सुनाई पड़ी। यह एकनाथ का रोचक भजन औरंगाबादकर मधुर लयपूर्वक बाबा के समक्ष गा रहे थे-

गुरुकृपांजन पायो मेरे भाई। राम बिना कुछ मानत नाहीं॥ ध्रु.॥
अन्दर रामा बाहर रामा। सपने में देखत सीतारामा॥ १॥ गुरु.॥
जागत रामा सोवत रामा। जहाँ देखे वहीं पूरन कामा॥ २॥ गुरु.॥
एका जनार्दनी अनुभव नीका। जहाँ देखे वहाँ रामसरीखा॥ ३॥ गुरु.॥

भजन अनेकों हैं, परन्तु विशेषकर यह भजन ही क्यों औरंगाबादकर ने चुना? क्या यह बाबा द्वारा ही संयोजित विचित्र अनुरूपता नहीं है? और क्या यह हेमाडपंत के गत दिन अखंड रामनाम स्मरण के संकल्प को प्रोत्साहन नहीं है? सभी संतों का इस सम्बन्ध में एक ही मत है और सभी रामनाम के जप को प्रभावकारी तथा भक्तों की इच्छापूर्ति और सभी कष्टों से छुटकारा पाने के लिये इसे एक अमोघ इलाज बतलाते हैं।

निन्दा सम्बन्धी उपदेश

उपदेश देने के लिये किसी विशेष समय या स्थान की प्रतीक्षा न कर बाबा यथायोग्य समय पर ही स्वतन्त्रतापूर्वक उपदेश दिया करते थे। एक बार एक भक्त ने बाबा की अनुपस्थिति में दूसरे लोगों के सम्मुख किसी को अपशब्द कहे। गुणों की उपेक्षा कर उसने अपने भाई के दोषारोपण में इतने बुरे से कटु वाक्यों का प्रयोग किया कि सुननेवालों को भी उसके प्रति घृणा होने लगी। बहुधा देखने में आता है कि लोग व्यर्थ ही दूसरों की निंदा कर झगड़ा और बुराइयाँ उत्पन्न करते हैं। संत तो परदोषों को दूसरी ही दृष्टि से देखा करते हैं। उनका कथन है कि शुद्धि के लिये अनेक विधियों में मिट्टी, जल और साबुन पर्याप्त है, परन्तु निंदा करने वालों की युक्ति भिन्न ही होती है। वे दूसरों के दोषों को केवल अपनी जिह्वा से ही दूर करते हैं और इस प्रकार वे दूसरों की निंदा कर उनका उपकार ही किया करते हैं, जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं[१]। निंदक को उचित मार्ग पर लाने के लिये साईबाबा की पद्धति सर्वथा ही भिन्न थी। वे तो सर्वज्ञ थे ही, इसलिये उस निंदक के कार्य को वे समझ गये। मध्याह्नकाल में जब लेण्डी के समीप उससे भेंट हुई, तब उन्होंने विष्ठा खाते हुए एक सुअर की ओर उँगली उठाकर उससे कहा कि– "देखो, वह कितने प्रेमपूर्वक विष्ठा खा रहा है। तुम जी भरकर अपने भाइयों को सदा अपशब्द कहा करते हो और यह तुम्हारा आचरण भी ठीक उसी के सदृश ही है। **अनेक शुभ कर्मों के परिणामस्वरूप ही तुम्हें मानव-तन प्राप्त हुआ और इसलिये यदि तुमने इसी प्रकार आचरण किया तो शिरडी तुम्हारी सहायता ही क्या कर सकेगी?"** कहने का तात्पर्य केवल यह है कि भक्त ने उपदेश ग्रहण कर लिया और वह वहाँ से चला गया। इस प्रकार प्रसंगानुसार ही वे उपदेश दिया करते थे। यदि उन पर ध्यान देकर नित्य उनका पालन किया जाय तो आध्यात्मिक ध्येय अधिक दूर न होगा। एक कहावत प्रचलित है कि– "यदि मेरा श्रीहरि होगा तो वह मुझे चारपाई पर बैठे-बैठे ही भोजन पहुँचायेगा।" यह कहावत भोजन और वस्त्र के विषय में सत्य प्रतीत हो सकती है, परन्तु यदि कोई इस पर विश्वास कर आलस्यवश बैठा रहे तो वह आध्यात्मिक क्षेत्र में कुछ भी प्रगति न कर उलटे पतन के घोर अंधकार में मग्न हो जायेगा। इसलिये आत्मानुभूति-प्राप्ति के लिये प्रत्येक को अनवरत परिश्रम करना चाहिये और जितना प्रयत्न वह करेगा, उतना ही उसके लिए लाभप्रद भी होगा। बाबा ने कहा **कि "मैं तो सर्वव्यापी हूँ और विश्व के समस्त भूतों तथा चराचर में व्याप्त रहकर भी अनंत हूँ।"** केवल उनके भ्रम-निवारणार्थ ही जिनकी दृष्टि में वे साढ़े तीन हाथ के मानव थे, स्वयं सगुण रूप धारण कर अवतीर्ण हुए। इसलिये **जो भक्त अनन्य भाव से उनकी शरण आये और जिन्होंने दिन-रात ही उनका ध्यान किया, उन्हें उनसे अभिन्नता प्राप्त हुई,** जिस प्रकार कि माधुर्य और मिश्री, लहर और समुद्र तथा नेत्र और कांति में अभिन्नता हुआ करती है। जो आवागमन के चक्र से मुक्त होना चाहें, वे शांत और स्थिर होकर अपना धार्मिक जीवन व्यतीत करें। दुःखदायी कटु शब्दों के प्रयोग से किसी को दुःखित न कर सदैव उत्तम कार्यों में संलग्न रहकर अपना कर्त्तव्य करते हुए अनन्य भाव से भयरहित हो उनकी शरण में जाना चाहिये। जो पूर्ण विश्वास से उनकी लीलाओं का श्रवण कर उनका मनन करेगा तथा अन्य वस्तुओं की चिंता त्याग देगा, उसे निस्संदेह ही आत्मानुभूति की प्राप्ति होगी। उन्होंने अनेकों से नाम का जपकर अपनी शरण में आने को कहा। जो यह जानने को उत्सुक थे कि "मैं कौन हूँ?" बाबा ने उन्हें भी लीलायें श्रवण और मनन करने का परामर्श दिया। किसी को भगवत् लीलाओं का श्रवण, किसी को भगवत्पादपूजन तो किसी को अध्यात्मरामायण व ज्ञानेश्वरी तथा धार्मिक ग्रन्थों का पठन एवं अध्ययन करने को कहा। अनेकों को अपने चरणों के समीप ही रखकर बहुतों को खंडोबा के मन्दिर में भेजा तथा अनेकों को विष्णु सहस्रनाम का जप करने व छान्दोग्य उपनिषद् तथा गीता का अध्ययन करने को कहा। उनके उपदेशों की कोई सीमा न थी। उन्होंने किन्हीं को प्रत्यक्ष और बहुतों को स्वप्न में दृष्टांत दिये। एक बार वे एक मदिरा-सेवी के स्वप्न में प्रगट होकर उसकी छाती पर चढ़ गये और जब उसने मद्यपान त्यागने की शपथ खाई,

---

१. निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिनु पानी साबुन बिना निर्मल करत सुभाय॥ – कबीर

तभी उसे छोड़ा। किसी-किसी को मंत्र जैसे "गुरुर्ब्रह्मा"[१] आदि का अर्थ स्वप्न में समझाया तथा कुछ हठयोगियों को हठयोग छोड़ने की राय देकर चुपचाप बैठ धैर्य रखने को कहा। उनके सुगम पथ और विधि का वर्णन ही असम्भव है। साधारण सांसारिक व्यवहारों में उन्होंने अपने आचरण द्वारा ऐसे अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किये, जिनमें से एक यहाँ नीचे दिया जाता है।

परिश्रम के लिये मजदूरी

एक दिन बाबा ने राधाकृष्णमाई के घर के समीप आकर एक सीढ़ी लाने को कहा। तब एक भक्त सीढ़ी ले आया और उनके बतलाये अनुसार वामन गोंदकर के घर पर उसे लगाया। वे उनके घर पर चढ़ गये और राधाकृष्णमाई के छप्पर पर से होकर दूसरे छोर से नीचे उतर आये। इसका अर्थ किसी की समझ में न आया। राधाकृष्णमाई इस समय ज्वर से काँप रही थीं। इसलिये हो सकता है कि उनका ज्वर दूर करने के लिये ही उन्होंने ऐसा कार्य किया हो। नीचे उतरने के पश्चात् शीघ्र ही उन्होंने सीढ़ी लाने वाले को दो रुपये पारिश्रमिक स्वरूप दिये। तब एक ने साहस कर उनसे पूछा कि इतने अधिक पैसे देना क्या अर्थ रखता है? उन्होंने कहा कि **किसी से बिना परिश्रम का मूल्य चुकाये कार्य न कराना चाहिये और कार्य करनेवाले को उसके श्रम का शीघ्र निपटारा कर उदार हृदय से मजदूरी देनी चाहिये।** यदि बाबा के इस नियम का पालन किया जाये अर्थात् मजदूरी का भुगतान शीघ्र और मजदूरों के लिये सन्तोषप्रद हो तो वे अधिक उत्तम कार्य करेंगे, लगन से कार्य करेंगे। फिर कार्य छोड़ने एवं हड़तालों की कोई समस्याही नहीं रह जायेगी और न ही मालिक और मजदूरों में वैमनस्य पैदा होगा।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

---

१. गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णो गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुस्साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

अध्याय - २०

विलक्षण समाधान।

श्री. काकासाहेब की नौकरानी द्वारा श्री. दासगणू की समस्या का समाधान।

श्री. काकासाहेब की नौकरानी द्वारा श्री. दासगणू की समस्या किस प्रकार हल हुई, इसका वर्णन हेमाडपंत ने इस अध्याय में किया है।

प्रारम्भ

श्रीसाई मूलतः निराकार थे, परन्तु भक्तों के प्रेमवश ही वे साकार रूप में प्रगट हुए। माया रूपी अभिनेत्री की सहायता से इस विश्व की वृहत् नाट्यशाला में उन्होंने एक महान् अभिनेता के सदृश अभिनय किया। आओ, श्री साईबाबा का ध्यान व स्मरण करें और फिर शिरडी चलकर ध्यानपूर्वक मध्याह्न की आरती के पश्चात् का कार्यक्रम देखें। जब आरती समाप्त हो गई, तब श्री साईबाबा ने मसजिद से बाहर आकर एक किनारे खड़े होकर बड़ी करुणा तथा प्रेमपूर्वक भक्तों को उदी वितरण की। भक्त गण भी उनके समक्ष खड़े होकर उनकी ओर निहारकर चरण छूते और उदी वृष्टि का आनंद लेते थे। बाबा दोनों हाथों से भक्तों को उदी देते और अपने हाथ से उनके मस्तक पर उदी का टीका लगाते थे। बाबा के हृदय में भक्तों के प्रति असीम प्रेम था। वे भक्तों को प्रेम से सम्बोधित करते, "ओ भाऊ! अब जाओ, भोजन करो। अन्ना! तुम भी अपने घर जाओ। बापू! तू भी जा और भोजन कर।" इसी प्रकार वे प्रत्येक भक्त से सम्भाषण करते और उन्हें घर लौटाया करते थे। अहा! क्या थे वे दिन, जो अस्त हुए तो ऐसे हुए कि फिर इस जीवन में कभी न मिलें! यदि तुम कल्पना करो तो अभी भी उस आनन्द का अनुभव कर सकते हो। अब हम साई की आनन्दमयी मूर्त्ति का ध्यान कर नम्रता, प्रेम और आदरपूर्वक उनकी चरणवन्दना कर इस अध्याय की कथा आरम्भ करते हैं।

ईशोपनिषद्

एक समय श्री दासगणू ने ईशोपनिषद् पर टीका (ईशावास्य-भावार्थबोधिनी) लिखना

प्रारम्भ किया। वर्णन करने से पूर्व इस उपनिषद् का संक्षिप्त परिचय भी देना आवश्यक है। इसमें वैदिक संहिता के मंत्रों का समावेश होने के कारण इसे 'मन्त्रोपनिषद्' भी कहते हैं और साथ ही इसमें यजुर्वेद के अंतिम (४० वें) अध्याय का अंश सम्मिलित होने के कारण यह वाजसनेयी (यजुः) संहितोषनिषद् के नाम से भी प्रसिद्ध है। वैदिक संहिता का समावेश होने के कारण इसे उन अन्य उपनिषदों की अपेक्षा श्रेष्ठतर माना जाता है, जो कि ब्राह्मण और आरण्यक (अर्थात् मन्त्र और धर्म) इन विषयों के विवरणात्मक ग्रंथ की कोटि में आते हैं। इतना ही नहीं, अन्य उपनिषद् तो केवल ईशोपनिषद् में वर्णित गूढ़ तत्वों पर ही आधारित टीकायें हैं। पण्डित सातवलेकर द्वारा रचित वृहदारण्यक उपनिषद् एवं ईशोपनिषद् की टीका प्रचलित टीकाओं में सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है।

प्रोफेसर आर.डी. रानाडे का कथन है कि ईशोपनिषद् एक लघु उपनिषद् होते हुए भी, उसमें अनेक विषयों का समावेश है, जो एक असाधारण अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। इसमें केवल १८ श्लोकों में ही आत्मतत्त्ववर्णन, एक आदर्श संत की जीवनी, जो आकर्षण और कष्टों के संसर्ग में भी अचल रहता है; कर्मयोग के सिद्धान्तों का प्रतिबिम्ब, जिसका बाद में सूत्रीकरण किया गया; तथा ज्ञान और कर्त्तव्य के पोषक तत्त्वों का वर्णन है; जिसके अन्त में आदर्श, चामत्कारिक और आत्मासंबंधी गूढ़ तत्त्वों का संग्रह है।

इस उपनिषद् के संबंध में संक्षिप्त परिचय से स्पष्ट है कि इसका प्राकृत भाषा में वास्तविक अर्थ सहित अनुवाद करना कितना दुष्कर कार्य है। श्री. दासगणू ने ओवी छन्दों में अनुवाद तो किया, परन्तु उसके सार तत्वको ग्रहण न कर सकने के कारण उन्हें अपने कार्य से सन्तोष न हुआ। इस प्रकार असंतुष्ट होकर उन्होंने कई अन्य विद्वानों से शंका-निवारणार्थ परामर्श और वादविवाद भी अधिक किया, परन्तु समस्या पूर्ववत् जटिल ही बनी रही और सन्तोषजनक अर्थ करने में कोई भी सफल न हो सका। इसी कारण श्री. दासगणू बहुत ही असंतुष्ट हुए।

केवल सद्गुरु ही अर्थ समझाने में समर्थ

यह उपनिषद् वेदों का महान् विवरणात्मक सार है। इस अस्त्र के प्रयोग से जन्म-मरण का बन्धन छिन्न भिन्न हो जाता है और मुक्ति की प्राप्ति होती है। अतः श्री. दासगणू को विचार आया कि जिसे आत्मसाक्षात्कार हो चुका हो, केवल वही इस उपनिषद् का वास्तविक अर्थ कर सकता है। जब कोई भी उनकी शंका का निवारण न कर सका तो उन्होंने शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करने का निश्चय किया। जब उन्हें शिरडी जाने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने बाबा से भेंट की और चरण-वन्दना

करने के पश्चात् उपनिषद् में आई हुई कठिनाइयाँ उनके समक्ष रखकर उनसे हल करने की प्रार्थना की। श्री साईबाबा ने आशीर्वाद देकर कहा कि "चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। उसमें कठिनाई ही क्या है? जब तुम लौटोगे तो विलेपार्ला में काका दीक्षित की नौकरानी तुम्हारी शंका का निवारण कर देगी।" उपस्थित लोगों ने जब ये वचन सुने तो वे सोचने लगे कि बाबा केवल विनोद ही कर रहे हैं और कहने लगे कि क्या एक अशिक्षित नौकरानी भी ऐसी जटिल समस्या हल कर सकती है? परन्तु दासगणू को तो पूर्ण विश्वास था कि बाबा के वचन कभी असत्य नहीं हो सकते, क्योंकि बाबा के वचन तो साक्षात् ब्रह्मवाक्य ही हैं।

काका की नौकरानी

बाबा के वचनों में पूर्ण विश्वास कर वे शिरडी से विलेपार्ला (बम्बई के उपनगर) में पहुँचकर काका दीक्षित के यहाँ ठहरे। दूसरे दिन दासगणू सुबह की मीठी नींद का आनन्द ले रहे थे, तभी उन्हें एक निर्धन बालिका के सुन्दर गीत का स्पष्ट और मधुर स्वर सुनाई पड़ा। गीत का मुख्य विषय था - एक लाल रंग की साड़ी। वह कितनी सुन्दर थी, उसका जरी का आँचल कितना बढ़िया था, उसके छोर और किनारें कितनी सुन्दर थीं, इत्यादि। उन्हें वह गीत अति रुचिकर प्रतीत हुआ। इस कारण उन्होंने बाहर आकर देखा कि यह गीत एक बालिका-नाम्या की बहन - जो काकासाहेब दीक्षित की नौकरानी है - गा रही है। बालिका बर्त्तन माँज रही थी और केवल एक फटे कपड़े से तन ढँके हुए थी। इतनी दरिद्री-परिस्थिति में भी उसकी प्रसन्न-मुद्रा देखकर श्री. दासगणू को दया आ गई और दूसरे दिन श्री. दासगणू ने श्री. एम्.व्ही. प्रधान से उस निर्धन बालिका को एक उत्तम साड़ी देने की प्रार्थना की। जब रावबहादुर एम्.व्ही. प्रधान ने उस बालिका को एक धोती का जोड़ा दिया, तब एक क्षुधापीड़ित व्यक्ति को जैसे भाग्यवश मधुर भोजन प्राप्त होने पर प्रसन्नता होती है, वैसे ही उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। दूसरे दिन उसने नई साड़ी पहनी और अत्यन्त हर्षित होकर सानन्द नाचने-कूदने लगी एवं अन्य बालिकाओं के साथ वह फुगड़ी खेलने में मग्न रही। अगले दिन उसने नई साड़ी सँभाल कर सन्दूक में रख दी और पूर्ववत् फटे पुराने कपड़े पहनकर आई, परन्तु फिर भी पिछले दिन के समान ही प्रसन्न दिखाई दी। यह देखकर श्री. दासगणू की दया आश्चर्य में परिणत हो गई। उनकी ऐसी धारणा थी कि निर्धन होने के ही कारण उसे फटे चिथड़े कपड़े पहनने पड़ते हैं, परन्तु अब तो उसके पास नई साड़ी थी, जिसे उसने सँभाल कर रख लिया और फटे कपड़े पहनकर भी उसी गर्व और आनन्द का अनुभव करती रही। उसके मुखपर दुःख या निराशा का कोई निशान भी नहीं रहा। इस प्रकार उन्हें अनुभव

हुआ कि दुःख और सुख का अनुभव केवल मानसिक स्थिति पर निर्भर है। इस घटना पर गूढ़ विचार करने के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भगवान ने जो कुछ दिया है, उसी में समाधान वृत्ति रखनी चाहिये और यह निश्चयपूर्वक समझना चाहिये कि वह सब चराचर में व्याप्त है और जो कुछ भी स्थिति उसकी दया से अपने को प्राप्त है, वह अपने लिये अवश्य ही लाभप्रद होगी। इस विशिष्ट घटना में बालिका की निर्धनावस्था, उसके फटे पुराने कपड़े और नई साड़ी देने वाला तथा उसकी स्वीकृति देने वाला यह सब ईश्वर द्वारा ही प्रेरित कार्य था। श्री. दासगणू को उपनिषद् के पाठ की प्रत्यक्ष शिक्षा मिल गई अर्थात् जो कुछ अपने पास है, उसी में समाधानवृत्ति माननी चाहिए। सार यह है कि जो कुछ होता है, सब उसी की इच्छा से नियंत्रित है, अतः उसी में संतुष्ट रहने में हमारा कल्याण है।

अद्वितीय शिक्षापद्धति

उपर्युक्त घटना से पाठकों को विदित होगा कि बाबा की पद्धति अद्वितीय और अपूर्व थी। बाबा शिरडी के बाहर कभी नहीं गये, परन्तु फिर भी उन्होंने किसी को मच्छिन्द्रगढ़, किसी को कोल्हापुर या सोलापुर साधनाओं के लिये भेजा। किसी को दिन में और किसी को रात्रि में दर्शन दिये। किसी को काम करते हुए, तो किसी को निद्रावस्था में दर्शन दिये और उनकी इच्छाएँ पूर्ण कीं। भक्तों को शिक्षा देने के लिये उन्होंने कौन कौन-सी युक्तियाँ काम में लाईं, इसका वर्णन करना असम्भव है। इस विशिष्ट घटना में उन्होंने श्री. दासगणू को विलेपार्ला भेज कर वहाँ उनकी नौकरानी द्वारा समस्या हल कराई। जिनका ऐसा विचार हो कि श्री. दासगणू को बाहर भेजने की आवश्यकता ही क्या थी, क्या वे स्वयं नहीं समझा सकते थे? उनसे मेरा कहना है कि बाबाने उचित मार्ग ही अपनाया। अन्यथा श्री. दासगणू किस प्रकार एक अमूल्य शिक्षा उस निर्धन नौकरानी और उसकी साड़ी द्वारा प्राप्त करते, जिसकी रचना स्वयं साई ने की थी।

ईशोपनिषद् की शिक्षा

ईशोपनिषद् की मुंख्य देन नीति-शास्त्र सम्बधी उपदेश है। हर्ष की बात है कि इस उपनिषद् की नीति निश्चित रूप से आध्यात्मिक विषयों पर आधारित है, जिसका इसमें वृहत् रूप से वर्णन किया गया है। उपनिषद् का प्रारम्भ ही यहीं से होता है कि समस्त वस्तुएँ ईश्वर से ओत-प्रोत हैं। यह आत्मविषयक स्थिति का भी एक उपसिद्धान्त है और जो नीतिसंबंधी उपदेश उससे ग्रहण करने योग्य है, वह यह है कि जो कुछ ईशकृपा से प्राप्त है, उसमें ही आनन्द मानना चाहिये और दृढ़ भावना रखनी चाहिये कि ईश्वर ही

सर्वशक्तिमान् है और इसलिए जो कुछ उसने दिया है, वही हमारे लिये उपयुक्त है। यह भी उसमें प्राकृतिक रूप से वर्णित है कि पराये धन की तृष्णा की प्रवृत्ति को रोकना चाहिये। सारांश यह है कि अपने पास जो कुछ है, उसी में सन्तुष्ट रहना, क्योंकि यही ईश्वरेच्छा है। चरित्र सम्बंधी द्वितीय उपदेश यह है कि कर्त्तव्य को ईश्वरेच्छा समझते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिये, विशेषतः उन कर्मों को जिनको शास्त्र में वर्णित किया गया है। इस विषय में उपनिषद् का कहना है कि आलस्य से आत्मा का पतन हो जाता है और इस प्रकार निरपेक्ष कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करने वाला ही अकर्मण्यता के आदर्श को प्राप्त कर सकता है। अन्त में कहा है कि जो सब प्राणियों को अपना ही आत्मस्वरूप समझता है तथा जिसे समस्त प्राणी और पदार्थ आत्मस्वरूप हो चुके हैं, उसे मोह कैसे उत्पन्न हो सकता है? ऐसे व्यक्ति को दुःख का कोई कारण नहीं हो सकता।

सर्वभूतों में आत्मदर्शन न कर सकने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के शोक, मोह और दुःखों की वृद्धि होती है। जिसके लिये सब वस्तुएँ आत्मस्वरूप बन गई हों, वह अन्य सामान्य मनुष्यों का छिद्रान्वेषण क्यों करने लगता है?

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥